राष्ट्रीय विकास में साहित्य का योगदान

शशि कुमार सैनी
रूड़की।

साहित्य समाज का दर्पण होता है, और समाज का प्रतिबिम्ब भी। किसी भी राष्ट्र या सभ्यता की जानकारी उसके साहित्य से ही प्राप्त होती है। साहित्य लोक जीवन का अभिन्न अंग है। किसी भी काल के साहित्य से उस समय की परिस्थितियों, जनमानस के रहन–सहन, खान–पान व अन्य गतिविधियों का पता चलता हैं। समाज साहित्य को प्रभावित करता है और साहित्य समाज पर प्रभाव डालता है। दोनों ही एक सिक्के के दो पहलू हैं। साहित्य का समाज से वही सम्बन्ध है जो सम्बन्ध आत्मा का शरीर से होता है। साहित्य समाज रूपी शरीर की आत्मा है, साहित्य अजर–अमर है, किसी महान विद्वान ने कहा है कि समाज नष्ट हो सकता है किन्तु साहित्य का कभी नाश नहीं हो सकता।

साहित्य का उद्देश्य मनोरंजन करना मात्र नहीं है, इसका उददेश्य समाज का मार्गदर्शन करना है। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने कहा है कि केवल मनोरंजन ही कवि का कर्म नहीं होना चाहिए, उसमें उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए।

बीसवीं शताब्दी के प्रमुख साहित्यकार आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने साहित्य को जनता का संचित प्रतिबिम्ब माना है। ''आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने साहित्य को ज्ञानराशि का संचित कोष कहा है।'' पंडित बालकृष्ण भट्ट ने साहित्य को जनसमूह के हृदय का विकास माना है।

भारतीय संस्कृत साहित्य ऋग्वेद से प्रारम्भ होना माना गया है। महर्षि व्यास, महर्षि बाल्मीकि जैसे ऋषियों ने महाभारत एवं रामायण जैसे महाकाव्यों की रचना की है। व्यास, कालिदास व अन्य कवियों ने संस्कृत में नाटक लिखे हैं, जो साहित्य की अमूल्य धरोहर हैं।

उक्त साहित्य कई भाषाओं में जैसेः–अवधी में गोस्वामी तुलसीदास, बृजभाषा में सूरदास, मारवाड़ी में मीराबाई, खड़ी बोली में कबीरदास, रसखान, मैथिलीशरण गुप्त आदि प्रमुख कवियों ने रचनाएं लिखी हैं। जिस राष्ट्र का साहित्य जितना अधिक समृद्ध होगा वह राष्ट्र उतना ही शक्तिशाली होगा।

मानवीय सभ्यता एवं राष्ट्र के विकास में साहित्य का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। विचारों ने साहित्य को जन्म दिया है और साहित्य ने मानवीय विचारधारा को गतिशीलता प्रदान की है। इतिहास साक्षी है कि किसी भी राष्ट्र या समाज में जितने भी परिवर्तन आये हैं वे सब साहित्य के माध्यम से ही आये हैं। साहित्यकार समाज में फैली कुरीतियों, विसंगतियों, अभावों, विषमताओं तथा असमानताओं के बारें में लिखता है। इनके प्रति जनमानस को जागरूक करने का कार्य करता है। जब सामाजिक जीवन में नैतिक मूल्यों का पतन होने लगता है तब साहित्य ही जनमानस का मार्गदर्शन करता है।

जीवन में मानव के साथ क्या घटित होता है, उसे साहित्यकार अपने शब्दों में रचकर साहित्य की रचना करता है अर्थात साहित्यकार जो देखता है, अनुभव करता है, चिंतन करता है, विश्लेषण करता है उसे वह अपने शब्दों में लिख देता है। साहित्य ने सदैव राष्ट्र व समाज को नई दिशा देने का कार्य किया है। साहित्य जनमानस को सकारात्मक सोच तथा लोक कल्याण के कार्यों के लिए सदैव प्रेरणा देने का कार्य करता रहा है।

प्रत्येक देश का साहित्य अपने देश की भौगोलिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों से जुड़ा होता है। साहित्यकार अपने देश के अतीत से प्राप्त विरासत पर गर्व करता है एवं वर्तमान का मूल्यांकन करता है और भविष्य के लिए सपने बुनता है और इस प्रकार कहा जा सकता है कि वह राष्ट्रीय आकांक्षाओं से परिचालित होता है।

राष्ट्रीय विकास को अंतर्राष्ट्रीयता के परिप्रेक्ष्य में रखकर देखने की कोशिश की जानी चाहिए। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की मान्यता के आधार पर कहें तो साहित्य मनुष्य के हृदय को स्वार्थ सम्बन्धों के संकुचित मंडलों से ऊपर उठाकर लोक सामान्य की भावभूमि पर ले जाता है। जहां पर जगत की विभिन्न गतियों के मार्मिक स्वरूप का साक्षात्कार और शुद्ध अनुभूतियों का संचार होता है।

भारत जैसे देश के सन्दर्भ में राष्ट्रीयता के बारे में कुछ दुविधाएं हैं। भारत मिश्रित संस्कृतियों का देश है। वर्तमान में साहित्यकारों के लिए आज भी भारत की मौलिक समस्या भूख, गरीबी, बेरोजगारी, एवं असमानता आदि है। भारत में राष्ट्रवाद का उदय उन परिस्थितियों में हुआ है जिन परिस्थितियों में राष्ट्रवाद को बढ़ावा देने की बजाय बाधाएं उत्पन्न हुई हैं। परन्तु आधुनिक साहित्य ने राष्ट्रवाद के विकास करने में अपनी अहम भूमिका निभाई है। यही कारण है कि भारत की जनसंख्या बहुधर्मी–बहुजातीय एवं बहुभाषी होने के बाद भी राष्ट्रवाद की ओर अग्रसर है। इसका श्रेय साहित्य को ही जाता है। वर्तमान साहित्य में लोकतांत्रिक मूल्यों की स्थापना को लेकर छटपटाहट देखी जा सकती है।

साहित्य अब सामाजिक सक्रियता की ओर बढ़ना चाहता है। परिवर्तन की अदम्य चाह में कवि, कलम की ताकत के द्वारा नई भूमिका में 21वीं सदी में प्रवेश कर चुका है। आज का समय उस दौर का साक्षी है, जहां मनुष्य के अमानवीयकरण की गति में तीव्रता आयी है। वैचारिक दृष्टि से समाजवाद का स्वरूप ध्वस्त हुआ है, तो यांत्रिक सभ्यता का कहर भी विद्यमान है। मानवता को खूंटियों पर टाँग देने का प्रयास हो रहा है। आज साहित्यकार को न केवल आक्रोश व्यक्त करना होता है, बल्कि वह उस विचारहीनता को चुनौती दे रहा है।

आजादी के 74 साल पूरे होने पर भी हवा, पानी और रोटी की समस्या का हल नहीं हो पाना उस तंत्र का वास्तविक चेहरा प्रस्तुत करता है, जिसका प्रभाव इस दशक तक जारी है। आज के साहित्य का आक्रोश देर तक संयमित नहीं रह पाता है। मनुष्य के राक्षस बनने की प्रक्रिया पर आज का साहित्य उस विचारहीन, बेढाल, निर्द्वन्द अथवा मरे हुए लोगों की भांति पीढ़ी पर व्यंग्य कर रहा है।

राष्ट्रीयता साहित्य सर्जन का महत्वपूर्ण पड़ाव है पर आज राष्ट्रीयता को संकीर्ण अवधारणा के रूप में व्याख्यापित किया जा रहा है। विशेषकर उन पश्चिमी शिक्षा प्राप्त बुद्धिजीवियों द्वारा जो गुलामी की दासता को पीठ पर लादकर प्रसन्न हैं, तथा राष्ट्र पर राष्ट्रीयता के राजनीतिक आयाम को ही देखने के लिए अभिशप्त हैं। आज सभ्यताओं को धैर्य का पर्याय बनाकर प्रस्तुत किया जा रहा है, तब अंधश्रद्धा ने मानवीय कटुता को जन्म दे दिया है। कभी अत्याधिक मांग ने किसी का हक छीना है तो नक्सली चिंताओं ने समाज की व्यवस्था पर प्रश्न चिन्ह लगा दिये हैं। जातीय, उन्माद प्रतिहिंसा के भाव और प्रतिशोध की चिंगारी लिये नयी सदी का प्रवेश हुआ है। आज का साहित्यकार आक्रोश का सर्जक होने के बावजूद अराजकतावादी मूल्यों का विरोधी है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भी अपने निबन्धों मे प्राचीन भारतीय संस्कृति के उदात्त स्वरूप को प्रत्यक्ष कर नयी युवा पीढ़ी को उसके महत्व से परिचित कराया है। राष्ट्रीयता का एक अन्य पक्ष वहां दिखाई देता है, जहां रचनाकार अपनी रचनाओं में वर्तमान के प्रति अपनी चिंता व्यक्त करता है और देश की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक विसंगतियों पर प्रहार करता है। इन स्थितियों में रचनाकार सुधार की कामना करता है और जनता का आह्वान करता है तथा स्वयं भी

सक्रियतापूर्वक इसमें भाग लेता है। देश की आजादी के संघर्ष काल से लेकर स्वतन्त्रता प्राप्ति तक तथा उसके बाद की रचनाएं इसका प्रबल प्रमाण हैं।

विचारधारा का जितना सरल इस्तेमाल साहित्य में होगा, साहित्य उतना ही विशिष्ट होगा। रचनाकार राष्ट्रीयता को साहित्य सर्जन के लिए उपजीव्य के रूप में ग्रहण करता है। इस राष्ट्रीयता का अधिष्ठान सांस्कृतिक है, राजनीतिक नहीं। जो लोग राष्ट्रीयता को (नेशन स्टेट) की अवधारणा से जोड़ते हैं और उसकी तुलना पश्चिम के राष्ट्रवाद से करते हैं वे केवल पश्चिम के चश्मे से ही चीजों को देखते हैं।

वैश्वीकरण की इस अवधारणा में स्थानीयता का तत्व छूट जाता है। वर्तमान में कई साहित्यकारों ने देश के स्वरूप का मनोरम चित्रण प्रस्तुत किया है और किसी ने उसकी महिमा का गायन किया है। अनेक रचनाकारों ने भारत के अतीत का गौरव और वर्तमान की स्थिति की दुरावस्था का वर्णन किया है। अनेक कविताओं में चुनौतियां ललकार और गर्जना के साथ बलिदान की मानसिकताओं को उभारा है। इन अनेक प्रकार की रचनाओं को राष्ट्रीय चेतना मानने में कोई समस्या नहीं है। समस्या आजादी के वास्तविक सरोकारों की खोज करने वाली रचनाओं के साथ है।

छायावाद के प्रसिद्ध कवि सुमित्रानन्दन पंत का यह कहना युक्तिसंगत है कि "हमारा विशाल देश राष्ट्र की भावना या कल्पना के वैदिक युग से परिचित रहा है।"

राष्ट्रीयता की भावना विकसित करने में आधुनिक साहित्य का बहुत बड़ा योगदान है। राष्ट्रवाद से सामुदायिक भावना का विकास होता है और लोकतांत्रिक भावना से राष्ट्रवाद समृद्ध होता है। देश की रक्षा हित एक समाज के जातीय स्वरूप के विकास की आकांक्षा राष्ट्रीय चेतना का अविभाज्य अंग है।

देश की रक्षा उसका हित केवल नारों में सुरक्षित रहता है। क्या हम राष्ट्रीय गौरव में जो गीत गाएंगे, वही राष्ट्रीयता के दायरे में आयेगा? क्या 15 अगस्त या 26 जनवरी को ही राष्ट्रगान या देश भक्ति के फिल्मी गीत गा लेना ही हमारी राष्ट्रीयता या देशभक्ति की इतिश्री है? ये कई यक्ष प्रश्न आज के युवा साहित्यकारों को विद्रोही रचनाओं के लिए उकसाते हैं।

यदि वर्तमान में हमने कुछ खोया है तो वह रिश्तों की बुनियाद! दरकते रिश्ते, कम होती स्निग्धता, प्रेम और आत्मीयता इतिहास की वस्तु बनते जा रहे हैं। राष्ट्रीयता का एक पक्ष है अपने अतीत की स्मृति।

अपनी संस्कृति के प्रति गौरव बोध वस्तुतः राष्ट्रीय अस्मिता का एक हिस्सा है और राष्ट्रीय अस्मिता राष्ट्रीयबोध का अभिन्न अंग है। प्रगति विकास संस्कृति, इतिहास, भूगोल आदि की जड़ भाषा होती है और भाषा को साहित्य समृद्ध करता है। साहित्य प्रत्येक वर्तमान को कलात्मक एवं यथार्थ रूप में समाज के सम्मुख रखता है। मनुष्य चाहे जितनी भी प्रगति कर ले, सभ्यता का दंभ भर ले, और विकास की डींगें हांक ले, पर जब तक वह भीतर से सभ्य नहीं होगा तब तक सही मायने में मनुष्य की प्रगति नहीं हो सकती। बाहरी सभ्यता भौतिक प्रगति को दर्शाती है तो भीतरी सभ्यता मानवता को तथा मानवीय मूल्यों के आदर्शों को परिलक्षित करती है।

समाज की आन्तरिक और बाह्य प्रगति के लिए साहित्य हमेशा से कल्पवृक्ष बना हुआ है। साहित्य की परिधि समाज का प्रत्येक हिस्सा रहा है। यहां पर किसी प्रकार का भेदभाव नहीं रहा है, जो अन्याय व अत्याचार का शिकार हुआ है। साहित्य ने खड़े होकर पीड़ितों के आंसू पोंछे हैं। साहित्य मनुष्य को बाहर और भीतर से सभ्य बनाने में मदद करता रहा है। वास्तव में वह तन और

मन की सभ्यता प्रदान करता है। जो साहित्य तन और मन की सभ्यता प्रदान करता है, वह शाश्वत साहित्य है। वर्तमान में साहित्य प्राकृतिक राष्ट्रीयता का मानवीकरण नहीं करता है। बल्कि वह समाज एवं राष्ट्र को उसके ठोस समाजिक सन्दर्भों के साथ रेखांकित करने का प्रयास करता है। एक कवि ने कहा है किः–

जो भरा नहीं है भावों से,
बहती जिसमें रसधार नही!
वह हृदय नहीं, वह पत्थर है
जिसमें स्वदेश का प्यार नही!!

हिंदी विश्व की सर्वाधिक सम्पन्न भाषा संस्कृत की ज्येष्ठ पुत्री है।

–आचार्य विनोबा भावे